International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(6): 42-46

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(6): 42-46
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 03-09-2021
Accepted: 08-10-2021

मयूरी झा
पी.एच.डी.,शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
मयूरी झा
पी.एच.डी.,शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

रूपकों की विश्वनाथपूर्ववर्तिनी परम्परा

मयूरी झा

सारांश
नाट्यशास्त्र की अपनी एक विशाल परम्परा रही है। परन्तु उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर आचार्य भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र से आचार्य विश्वनाथ पर्यन्त उपलब्ध ग्रन्थों के आलोक में रूपकों की परम्परा का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए विभिन्न आचार्यों के रूपक सम्बन्धी मतों का क्रमिक अध्ययन प्रस्तुत शोध पत्र के अन्तर्गत किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य आचार्य विश्वनाथ से पूर्ववर्ती रूपकों की परम्परा का अध्ययन प्रस्तुत करना है। अतः विश्वनाथ से पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों के आलोक में दशरूपकों की परम्परा सम्बन्धी अध्ययन को प्रस्तुत करने का यथासंभव प्रयास किया गया है।

कूटशब्द : विश्वनाथपूर्ववर्तिनी, संस्कृत नाट्यशास्त्र परम्परा, मात्राधिक्य, रूपक सम्बन्धी मत

प्रस्तावना
संस्कृत नाट्यशास्त्र परम्परा का प्रारम्भ यद्यपि भरत मुनि से पूर्वकाल में भी था, क्योंकि नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत के द्वारा अनेक नाट्यशास्त्रियों के नामों का उल्लेख किया गया है। तथापि उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर भरत मुनि ही नाट्यशास्त्र के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। अतः नाट्यशास्त्रीय परम्परा का अध्ययन आचार्य भरत से ही प्रारम्भ होता है।
सर्वप्रथम 'रूपक' शब्द पर विचार अपेक्षित है। 'रूपक' शब्द रूप् धातु से ण्वुल् प्रत्यय से निष्पन्न होता है। अथवा रूप् धातु से कन् प्रत्यय करने पर भी रूपक शब्द बनता है, जिसके आकृति, वर्णन, नाट्याकृति आदि अनेक अर्थ होते हैं। [1] सामान्यतया संस्कृत नाट्यशास्त्र तथा काव्यशास्त्र में 'रूपक' शब्द समान अर्थों में प्रयुक्त नहीं होता है। नाट्यशास्त्र में 'रूपक' शब्द दस प्रकार के नाटक आदि रूपकों के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है, जबकि काव्यशास्त्रीय परम्परा में 'रूपक' शब्द एक सादृश्यमूलक अलंकार के रूप में प्रसिद्ध है।
संस्कृत नाट्यशास्त्रीय परम्परा में नाट्य, रूपक, रूप आदि समानार्थक पद हैं, जैसा कि आचार्य धनंजय ने दशरूपक में कहा है –

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
रूपकं तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम्।। [2]

अर्थात् काव्य में वर्णित रामादि की धीरोदात्तादि अवस्थाओं का आंगिक आदि चार प्रकार के अभिनयों द्वारा अनुकरण नाट्य कहलाता है। दृश्य अर्थात् चाक्षुष ज्ञान का विषय होने के कारण यह रूप कहलाता है। नट में रामादि की अवस्थाओं का आरोप होने के कारण यह रूपक कहलाता है।

भरतमुनि एवं रूपक
यदि नाट्यशास्त्र की दृष्टि से विचार करें तो नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में 'नाट्य' को परिभाषित किया गया है। भरत मुनि के अनुसार –

नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकः।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्।। [3]

[1] संस्कृत–हिन्दी कोश – वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ 861
[2] दशरूपक 1.8
[3] नाट्यशास्त्र 1.112

अर्थात् नाना प्रकार के भावों से युक्त और नाना प्रकार की अवस्थाओं वाला लोकव्यवहार का अनुकरण करने वाला यह नाट्य मैंने बनाया है।

इसके पश्चात् नाट्यशास्त्र के अठाहरवें अध्याय के प्रथम श्लोक में भरत कहते हैं –

वर्त्तयिष्याम्यहं विप्रा ! दशरूपविकल्पनम्।
नामतः कर्मतश्चैव तथा चैव प्रयोगतः।।

अर्थात् हे विप्रों ! अब मैं नाम, कर्म तथा प्रयोग के अनुसार दश रूपों अर्थात् रूपकों के विधान का वर्णन करता हूँ। अतः भरत मुनि 'रूप' शब्द से रूपक का कथनमात्र कर उसके नाटक आदि भेदों का निरूपण किया है। इस श्लोक की टीका में अभिनवगुप्त ने 'रूपक' शब्द को परिभाषित किया है, यथा – 'रूप्यते प्रत्यक्षीक्रियते योऽर्थः तद्वाचकत्वात्काव्यानि रूपाणि।' अर्थात् जिस अर्थ का रूपण अर्थात् प्रत्यक्ष करते हैं, उस अर्थ के वाचक होने से काव्य भी 'रूप' किंवा 'रूपक' कहलाता है। तत्पश्चात् भरत मुनि ने दस रूपकों को कहा है –

नाटकं सप्रकरणमंको व्यायोग एव च।
भाणः समवकारश्च वीथी प्रहसनं डिमः।।
ईहामृगश्च विज्ञेयो दशमो नाट्यलक्षणे। [4]

अर्थात् नाटक, प्रकरण, अङ्क, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम और ईहामृग ये नाट्य अर्थात् रूपक के दश भेद हैं। आचार्य भरत का रूपकविवेचन वृत्तियों के आधार पर प्रारम्भ होता है। उनके अनुसार वृत्तियाँ सभी काव्यों की माताएँ हैं तथा इन वृत्तियों के प्रयोग से ही ये दश रूपक विनिःसृत हैं। जिस प्रकार जातियों तथा श्रुतियों से स्वर ग्रामत्व को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार वृत्तियों के भेद से काव्यबन्ध रूपक बन जाते हैं। जिस प्रकार षड्ज और मध्यम दोनों ग्राम पूर्ण स्वर होते हैं, वैसे ही काव्यबन्ध भी सम्पूर्ण वृत्तियों से निष्पन्न होते हैं। नाटक और प्रकरण को समस्त वृत्तियों से निष्पन्न और अनेक प्रकार के बन्धों के आश्रय समझना चाहिए। वीथी, समवकार, ईहामृग, उत्सृष्टिकांक, व्यायोग, भाण, प्रहसन और डिम नामक रूपकों में कैशिकी वृत्ति से रहित प्रयोग होने चाहिए।[5] इसके पश्चात् भरत मुनि ने रूपकों के दश भेदों का क्रमशः निरूपण किया है –

नाटक: जिसमें कथावस्तु ऐतिहासिक प्रख्यात हो, नायक प्रख्यात, उदात्त, राजर्षि, दिव्याश्रय और विलासादि गुणों से युक्त धीरोदात्तादि कोटि का हो, जहां अंक, प्रवेशकादि विद्यमान हों। तथा जिसमें राजाओं का चरित अनेक रसों और भावों के अनुसार अनेक चेष्टाओं से एवं सुख–दुःख की अनुभूतियों से युक्त हो वह नाटक कहलाता है। कवियों को नाटक में विभिन्न अवस्थाओं से युक्त कार्यों को देखकर बिन्दु आदि के विस्तार से युक्त गुणों से आश्रित अंकों की रचना करनी चाहिए। [6]

भरतमुनि के अनुसार अंक एक रूढ़ि शब्द है जो भाव और रसों के द्वारा अर्थों को प्रकट करता है और अनेक विधानों से युक्त होता है। नाटक तथा प्रकरण में पाँच से लेकर दस तक अंक होने चाहिए। अंक में क्रोध, प्रसाद, शोक, शापोत्सर्ग, विद्रव, विवाह तथा संभाव्य अद्भुत वस्तु को प्रत्यक्ष दिखाना चाहिए। जब कार्य दिन के अन्त में पूर्ण न हो सके तब अंकच्छेद कर प्रवेशक के द्वारा उसका विधान करना चाहिए। जहाँ पर नाटक और प्रकरण के अंक में नायक सन्निहित हो तथा परिजनों की कथा का अनुबन्ध हो उसे प्रवेशक कहा जाता है। जहाँ पर उत्तम और मध्यम पुरुषों के चरित का वर्णन न हो तथा न ही उदात्त वचनों में व्यवहार हो, वहाँ पर प्राकृत भाषा का प्रयोग करना चाहिए। युद्ध राजभ्रंश, मरण, नगर का अवरोध आदि को अंक में प्रत्यक्ष न दिखा कर उन्हें प्रवेशक के द्वारा प्रस्तुत करना चाहिए। नाटक तथा प्रकरण के अंक तथा प्रवेशक में अभ्युदयशाली नायक का वध नहीं दिखाना चाहिए। अभ्युदयशाली नायक के भागने का, पकड़े जाने का अथवा सन्धि करने का वर्णन रस के अनुसार काव्यश्लेष के द्वारा ही दिखाना चाहिए। नाटक तथा प्रकरण में पारिवारिक सदस्यों की संख्या चार या पाँच से अधिक नहीं होनी चाहिए। नाटक को गोपुच्छ के अग्रभाग के समान होना चाहिए। अनेक प्रकार के रसों तथा भावों से परिपूर्ण निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस की योजना करनी चाहिए। [7]

प्रकरण: प्रकर्षणे क्रियते कल्पेत वस्तु यस्मिन् इति प्रकरणम् जिसका अर्थ है वस्तु का पूर्णतः एवं आंशिक रूप में कल्पित होना। रूपक के दूसरे प्रकार प्रकरण में कवि अपनी शक्ति से कथावस्तु, शरीर (फल के उपाय) और नायक की औत्पत्तिक कल्पना करता है। इसमें कथावस्तु अनार्ष, अभूतपूर्व गुणों से युक्त और कल्पित होती है। नाटक में जो वस्तु, शरीर और वृत्तियों के भेद कहे गए हैं, वे सभी लक्षणसहित सभी सन्धियों में प्रकरण में भी होते हैं। इसमें विप्र, वणिक्, सचिवों, पुरोहित, अमात्य और सेनापतियों के अनेक प्रकार के चरितों का वर्णन किया जाता है। इसमें उदात्त नायक, दिव्य चरित के पात्र तथा राजसम्भोग का वर्णन न होकर केवल बाह्य पात्रों का ही वर्णन होता है। इसमें दास, विट, श्रेष्ठि, वेश्या तथा निम्न कुल की स्त्रियों के चरित का वर्णन होता है। इसमें जहाँ पर सचिव, श्रेष्ठि, ब्राह्मण, पुरोहित, अमात्य और सेनापतियों के घर की वार्ता हो वहाँ पर वेश्या का प्रवेश नहीं कराना चाहिए और

---

[4] वही 18.2–3

[5] सर्वेषामेव काव्यानां मातृका वृत्तयः स्मृताः।
आभ्यो विनिस्सृतं ह्येतद्दशरूपं प्रयोगतः।।
जातिभिः श्रुतिभिश्चैव स्वरा ग्रामत्वमागता।
यथा तथा वृत्तिभेदैः काव्यबन्ध भवन्ति हि।।
ग्रामौ पूर्णस्वरौ द्वौ तु यथा वै षड्जमध्यमौ।
सर्ववृत्तिविनिष्पन्नौ काव्यबन्धै तथा त्विमौ।।
ज्ञेयं प्रकरणं चैव तथा नाटकमेव च।
सर्ववृत्तिविनिष्पन्नं नानाबन्धसमाश्रयम्।।
वीथी समवकारश्च तथेहामृग एव च।
उत्सृष्टिकांकोव्यायोगो भाणः प्रहसनं डिमः।।
कैशिकीवृत्तिहीनानि रूपाण्येतानि कारयेत्। वही 18.4–9

[6] प्रख्यातवस्तुविषयं प्रख्यातोदात्तनायकः।
राजर्षिवंश्यचरितं तथैव दिव्याश्रयोपेतम्।।
नानाविभूतिभिर्युतमृद्धिविलासादिभिर्गुणैश्चैव।
अंकप्रवेशकाढ्यं भवति हि तन्नाटकं नाम।।
नृपतीनां यच्चरितं नानारसभावचेष्टितं बहुधा।
सुखदुःखोत्पत्तिकृतं भवति हि तन्नाटकं नाम।।
अस्यावस्थोपेतं कार्यं प्रसमीक्ष्य बिन्दुविस्तारात्।
कर्तव्योऽङ्क सोऽपि तु गुणान्वितं नाट्यतत्त्वज्ञैः।। वही 18.10–13

[7] अंक इति रूढिशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहयत्वर्थान्।
नानाविधनयुक्तो यस्मात्तस्माद्भवेदंकः।।
पंचाक्षरा दशपरा ह्यंकः स्युर्नाटके प्रकरणे च।
क्रोधप्रसादशोकाः शापोत्सर्गोऽथ विद्रवोद्वाहौ।
अद्भुतसम्भवदर्शनमंके प्रत्यक्षजानि स्युः।।
दिवसावसानकार्यं यद्यंके नोपपद्यते सर्वम्।
अंकच्छेदं कृत्वा प्रवेशकैस्तद्विधातव्यम्।।
सन्निहितनायकोऽङ्कः कर्तव्यो नाटके प्रकरणे वा।
परिजनकथानुबन्धः प्रवेशको नाम विज्ञेयः।।
नोत्तममध्यमपुरुषैराचरितो नाप्युदात्तवचनकृतः।
प्राकृतभाषाचारः प्रयोगमाश्रित्य कर्तव्यः।।
युद्धं राज्यभ्रंशो मरणं नागरोपरोधनं चैव।
प्रत्यक्षाणि तु नांके प्रवेशकैः संविधेयानि।।
अंके प्रवेशके च प्रकरणमाश्रित्य नाटके वापि।
न वधः कर्तव्यः स्याद्योऽभ्युदयी नायकः ख्यातः।।
अपसरणमेव कार्यः ग्रहणं वा सन्धिरेव वा योज्यः।
काव्यश्लेषैर्बहुभिर्यथारसं नाट्यतत्त्वज्ञैः।।
न तु महाजनपरिवारं कर्तव्यं नाटकं प्रकरणं वा।
ये तत्र कार्यपुरुषाश्चत्वारः पंच वा ते स्युः।।
कार्यं गोपुच्छाग्रं कर्तव्यं काव्यबन्धमासाद्य।
सर्वेषां काव्यानां नानारसभावयुक्तियुक्तानाम्।
निर्वहणे कर्तव्यो नित्यं हि रसोऽद्भुतस्तज्ज्ञैः।। वही 18.14,19–20,26,28,34,38–43

यदि वेश्या का प्रवेश आवश्यक हो तब कुलस्त्री का वर्णन नहीं करना चाहिए। यदि किसी कारण से वेश्या और कुलस्त्री का एक साथ वर्णन अभीष्ट हो वहाँ अविकृत अर्थात् शुद्ध भाषा और आचार का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसमें प्रवेशक के समान संक्षेप में संस्कृत वचनों से युक्त मध्यम पुरुषों के द्वारा विष्कम्भक का नित्य प्रयोग करना चाहिए। [8]

समवकार: देव और असुरों के वस्तुरूप बीज से जिसकी रचना होती हो, जिसमें प्रख्यात और उदात्त नायक होता हो, जिसमें तीन अंक, तीन कपट, तीन विद्रव, तीन शृंगार, बारह नायक, अठारह नाडिकाओं में होने वाला अभिनय हो, वह समवकार कहलाता है। इसका प्रथम अंक प्रहसन, विद्रव, कपट और वीथी से युक्त होता हुआ बारह नाडी में होना चाहिए, द्वितीय अंक चार नाडियों में होना चाहिए, तृतीय अंक दो नाडियों का होना चाहिए जिसमें कथावस्तु की समाप्ति हो जाय। इसमें युद्ध और जल शृंगार के संप्लव से युक्त वायु, अग्नि, हाथी के द्वारा किए गए संभ्रम से युक्त तथा नगर के अवरोध से उत्पन्न तीन प्रकार का विद्रव होता है। इसमें वस्तुगत क्रम से विहित, दैववशात् अथवा दूसरे के द्वारा उत्पन्न किया गया तथा सुख–दुःख की उत्पत्ति के कारण होने वाला तीन प्रकार का कपट होता है। इसमें धर्म, अर्थ तथा काम रूप प्रयोजन के लिए प्रयुक्त तीन प्रकार का शृंगार होता है। इसमें उष्णिक्, गायत्री आदि कुटल बन्धों वाले छन्दों का तथा अनेक प्रकार के रसों का प्रयोग करना चाहिए। [9]

ईहामृग: इसमें कथावस्तु सम्यक् रूप से निबद्ध होती है। किसी दिव्य स्त्री के कारण परस्पर अविश्वास के कारण इसमें दिव्य पुरुषों में युद्ध का वर्णन होता है। इसमें प्रायः उद्धत पुरुष पात्र होते हैं। स्त्रीविरोध पर आधरित काव्यबन्ध होता है जो संक्षोभ, विद्रव और संफेट का जनक होता है। स्त्री के कारण भेदन, अपहरण, अवमर्दन से युक्त शृंगारिक कथावस्तु होती है। व्यायोग में जो पुरुष, वृत्ति और रस होते हैं, वे ही ईहामृग में भी होते हैं। इसमें केवल देवस्त्रियों का ही वर्णन होता है। जहाँ पर पुरुषों का वध ईप्सित हो वहाँ उग्र वध का ही वर्णन होता है तथापि किसी बहाने से उनके युद्ध को शान्त कर देना चाहिए। [10]

डिम: इसमें कथावस्तु प्रख्यात होती है तथा नायक प्रख्यात और उदात्त होता है। यह शृंगार तथा हास्य रस को छोड़कर शेष सभी छह रसों से युक्त होता है। इसकी कथावस्तु दीप्त रसों और अनेक भावों से सम्पन्न होती है। इसमें निर्घात, उल्कापात, सूर्य तथा चन्द्रग्रहण, युद्ध, नियुद्ध, आघर्षण और संफेट से युक्त वर्णन होता है। इसके अतिरिक्त इसमें माया, इन्द्रजाल की बहुलता, पुस्त, उत्थान से युक्त देव, नाग, राक्षस, यक्ष तथा पिशाचों का वर्णन होता है। यह सोलह नायकों से युक्त, सात्त्वती और आरभटी वृत्तियों से सम्पन्न होता है। [11]

व्यायोग: व्यायोग में नायक तथा कथावस्तु प्रख्यात होती है। यह अल्प स्त्रीपात्रों वाला तथा एक दिन में अभिनेय होता है। समवकार के समान इसमें बहुत से पुरुष पात्र होते हैं। परन्तु इसमें दिव्य नायक नहीं होता तथा यह एक अंक का ही होता है। इसमें नायक राजर्षि होता है। युद्ध, नियुद्ध, आघर्षण और संघर्ष से युक्त वृत्तान्त होता है तथा यह शृंगार, हास्य और शान्त रस से भिन्न अन्य रसों से दीप्त होता है। [12]

उत्सृष्टिकांक: इसमें प्रख्यात और कभी–कभी अप्रख्यात विषयवस्तु होती है। दिव्य पुरुषों को छोड़कर शेष सभी प्रकार के पुरुष होते है। प्रायः इसमें करुण रस होता है, जिस कारण युद्ध और उद्धत प्रहार नहीं होते हैं। इसमें स्त्रियों के विलाप अधिक होने से निर्वेदयुक्त भाषण अधिक होते हैं। इसमें अनेक प्रकार की व्याकुल

---

[8] यत्र कविरात्मशक्त्या वस्तु शरीरं च नायकश्चैव।
औत्पत्तिकं प्रकुरुते प्रकरणमिति तद् बुधैर्ज्ञेयम्।।
यदनार्षमथाहार्यं काव्यं प्रकरोत्यभूतगुणयुक्तम्।
उत्पन्नबीजवस्तु प्रकरणमिति तदपि विज्ञेयम्।।
यन्नाटके मयोक्तं वस्तु शरीरं च वृत्तिभेदाश्च।
तत्प्रकरणे योज्यं सलक्षणं सर्वसन्धिषु तु।।
विप्रवणिक्सचिवानां पुरोहितामात्यसार्थवाहानाम्।
चरितं यन्नैकविधं ज्ञेयं तत्प्रकरणं नाम।।
नोदात्तनायककृतं न दिव्यचरितं न राजसम्भोगम्।
बाह्यजनसंप्रयुक्तं तज्ज्ञेयं प्रकरणं तज्ज्ञैः।।
दासविटश्रेष्ठियुतं वेशस्त्रयुपचारकारणोपेतम्।
मन्दकुलस्त्रीचरितं काव्यं कार्यं प्रकरणे तु।।
सचिवश्रेष्ठिब्राह्मणपुरोहितामात्यसार्थवाहानाम्।
गृहवार्ता यत्र भवेन्न तत्र वेश्यांगना कार्या।।
यदि वेशयुवतियुक्तं न कुलस्त्रीसंगमोऽपि स्यात्।
अथ कुलजनप्रयुक्तं न वेशयुवतिर्भवेत्तत्र।।
यदि वा कारणयुक्त्या वेशकुलस्त्रीकृतोपचारः स्यात्।
अविकृतभाषाचारं तत्र तु पाठ्यं प्रयोक्तव्यम्।।
मध्यमपुरुषैर्नित्यं योज्यो विष्कम्भकोऽत्र तत्त्वज्ञैः।
संस्कृतवचनानुगतः संक्षेपार्थः प्रवेशकवत्।। वही 18.45–54

[9] देवासुरबीजकृतः प्रख्यातोदात्तनायकश्चैव।
त्रयंकस्तथा त्रिकपटस्त्रिविद्रवः स्यात्त्रि शृंगारः।।
द्वादशनायकबहुलो ह्यष्टादशनाडिका प्रमाणश्च।
अंकस्तु सप्रहसनः सविद्रवः कपटः सवीथीकः।
द्वादशनाडीविहितः प्रसवः कार्यः क्रियोपेतः।।
कार्यस्तथा द्वितीयः समाश्रितो नाडिकाश्चतस्रस्तु।
वस्तु समापनविहितो द्विनाडिकः स्यात्तृतीयस्तु।।
युद्धजलसंप्लवो वा वाय्वग्निगजेन्द्रसंभ्रमकृतो वा।
नगरोपरोधजो वा विज्ञेयो विद्रवस्त्रिविधः।।
वस्तुगतक्रमविहितो दैववशाद्वा परप्रयुक्तो वा।
सुखदुःखोत्पत्तिकृतस्त्रिविधः कपटोऽत्र विज्ञेयः।।
त्रिविधश्चात्र विधिज्ञैः पृथक्पृथक्कार्ययोगविहितार्थः।
शृंगारः कर्तव्यो धर्मे चार्थे च कामे च।।
उष्णिग्गायत्रयादीन्यन्यानि च यानि बन्धकुटिलानि।
वृत्तानि समवकारे कविभिस्तानि प्रयोज्यानि।।
एवं कार्यस्तज्ज्ञैर्नानारससंश्रयः समवकारः।। वही 18.63–66, 70–72, 76–77

[10] दिव्यपुरुषाश्रयकृतो दिव्यस्त्रीकारणोपगतयुद्धः।
सुविहितवस्तुनिबद्धो विप्रत्ययकारकश्चैव।।
उद्धतपुरुषप्रायः स्त्रीविरोधग्रथितकाव्यबन्धश्च।
संक्षोभविद्रवकृतः संफेटकृतस्तथा चैव।।
स्त्रीभेदनापहरणावमर्दनप्राप्तवस्तु शृंगारः।
ईहामृगस्तु कार्यः सुसमाहितकाव्यबन्धश्च।।
यद्वयायोगे कार्यं ये पुरुषा वृत्तयो रसाश्चैव।
ईहामृगेऽपि ते स्युः केवलममरस्त्रिया योगः।।
यत्र तु वधेप्सितानां वधे ह्युदग्रो भवेद्धि पुरुषाणाम्।
किंचिद्वयांजं कृत्वा तेषां युद्धं शमयितव्यम्।। वही 18.76–82

[11] प्रख्यातवस्तुविषयः प्रख्यातोदात्तनायकश्चैव।
षड्रसलक्षणयुक्तश्चतुरंको वै डिमः कार्यः।।
शृंगारहास्यवर्जं शेषैः सर्वै रसैः समायुक्तः।
दीप्तरसकाव्ययोनिर्नानाभावोपसम्पन्नः।।
निर्घातोल्कापातैरुपरागेणेन्दुसूर्ययोर्युक्तः।
युद्धनियुद्धाघर्षण संफेटकृतश्च कर्तव्यः।।
मायेन्द्रजालबहुलो बहुपुस्तोत्थानयोगयुक्तश्च।
देवभुजगेन्द्रराक्षसयक्षपिशाचावकीर्णश्च।।
षोडशनायकबहुलः सात्त्वत्यारभटीवृत्तिसम्पन्नः।
कार्यो डिमः प्रयत्नान्नानाश्रयभावसम्पन्नः।। वही 18.84–88

[12] व्यायोगस्तु विधिज्ञैः कार्यं प्रख्यातनायकशरीरः।
अल्पस्त्रीजनयुक्तस्त्वेकाहकृतस्तथा चैव।।
बहवश्च तत्र पुरुषा व्यायच्छन्ते यथा समवकारे।
न च दिव्यनायकयुक्तः कार्यस्त्वेकांक एवायम्।।
न च दिव्यनायककृतः कार्यो राजर्षिनायकनिबद्धः।
युद्धनियुद्धाघर्षणसंघर्षकृतश्च कर्तव्यः।।
एवंविधस्तु कार्यो व्यायोगे दीप्तकाव्यरसयोनिः। वही 18.90–93

चेष्टाएँ होती है तथा सात्त्वती, आरभटी और कैशिकी वृत्तियाँ नहीं होती हैं। [13]

प्रहसन: प्रहसन शुद्ध तथा संकीर्ण भेद से दो प्रकार का होता है। जिसमें भगवत् तपस्वियों, विप्रों तथा अन्य व्यक्तियों का हास्य संवाद, प्रायः कुत्सित पुरुषों के द्वारा प्रयुक्त परिहासयुक्त भाषण, अविकृत भाषा और व्यवहार से युक्त विशेष भावों और चरितों से युक्त नियतगति और वस्तु हो, वह शुद्ध प्रहसन होता है। जिसमें वेश्या, चेट, नपुंसक, विट, धूर्त और बन्धकी स्त्री हो तथा असभ्य वेषभूषा, वस्त्र, चेष्टाएँ तथा विविध उपकरण हो, वह संकीर्ण प्रहसन होता है। प्रहसन में लोकव्यवहार से युक्त तथा दम्भ का संयोग धूर्तों के वादविवाद को वर्णित करना चाहिए। यह वीथी के यथायोग्य अंगों से युक्त होता है।[14]

भाण: आत्मानुभूत बात को कहने वाला तथा दूसरों के विषय की बातों का वर्णन करने वाला एक पात्र के अभिनेय भाण कहलाता है। दूसरों के वचनों को आत्मसंस्थ कर प्रतिवचनों से उत्तरोत्तर ग्रथित आकाशभाषितों के द्वारा अंगविकारों के द्वारा अभिनय से धूर्त और विट के द्वारा प्रयुक्त अनेक अवस्थाओं वाला तथा विविध चेष्टाओं वाला एक अंक का रूपक भाण कहलाता है।[15]

वीथी: समस्त रसों के लक्षणों से युक्त तथा तेरह अंकों से युक्त, एक अथवा दो पात्रों के द्वारा अभिनेय एक अंक वाली वीथी कहलाती है। इसमें अधम, उत्तम और मध्यम तीन प्रकार के पात्र होते हैं तथा उद्घात्यक, अवलगित, अवस्यन्दित, नाली, असत्प्रलाप, वाक्केली, प्रपंच, मृदव, अधिबल, छल, त्रिगत, व्याहार और गण्ड ये तेरह अंग होते हैं। वीथी में इन तेरह अंगों की सदा योजना करनी चाहिए। [16]

अग्निपुराण एवं रूपक

अग्निपुराण में रूपकों के 27 भेद माने गए हैं, जिनमें भरत मुनि द्वारा उक्त दस रूपकों के अतिरिक्त 17 रूपक और बताए गए हैं। अग्निदेव वसिष्ठ से कहते हैं कि –

नाटकं सप्रकरणं डिम ईहामृगोऽपि वा।
ज्ञेयः समवकारश्च भवेत्प्रहसनं तथा।।
व्यायोगभाणवीथ्यंकत्रोटकान्यथ नाटिका।
सट्टकं शिल्पकः कर्णा एको दुर्मल्लिका तथा।।
प्रस्थानं भाणिका भाणी गोष्ठी हल्लीशकानि च।
काव्यं श्रीगदितं नाट्यरासकं रासकं तथा।।
उल्लाप्यकं प्रेक्षणंच सप्तविंशतिरेव तत्।। [17]

अतः स्पष्ट है कि उक्त दस रूपकों के अतिरिक्त जो 17 भेद अग्निपुराण में प्रदर्शित किए गए हैं, वे अन्य आचार्यों के द्वारा उपरूपक कहे गए हैं। अग्निपुराण में रूपकों के लक्षणों को प्रदर्शित नहीं किया गया है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण एवं रूपक

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के तृतीय खण्ड के 17 वें अध्याय में 12 रूपकों का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है, जिनमें दस रूपक तो भरत मुनि के अनुसार ही हैं, इनके अतिरिक्त यहाँ पर नाटिका तथा प्रकरणी दो अन्य रूपकों का भी वर्णन किया गया है। नाटिका तथा प्रकरणी को अन्य आचार्यों ने उपरूपक माना है। भरत मुनि द्वारा कथित रूपकों के लक्षणों से ही कुछ–कुछ अंश यहाँ पर लिया गया है।[18]

आचार्य वामन एवं रूपक

आचार्य वामन ने काव्यलंकारसूत्रवृत्ति में कहा है –

सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेय: ।। [19]

आचार्य भोजराज एवं रूपक

अलंकारशास्त्र के क्षेत्र में आचार्य भोज की दो रचनायें उपलब्ध हैं– सरस्वतीकण्ठाभरण एवं श्रृंगारप्रकाश। आचार्य भरतमुनि आदि के पश्चात् आचार्य भोज ने भी रूपक एवं उपरूपक की परम्परा को दर्शाया है। आचार्य भोज १२ रूपक एवं १२ उपरूपकों का प्रतिपादन करते हैं।

रूपक इस प्रकार हैं– नाटक, प्रकरण, व्यायोग, ईहामृग, समवकार, डिम, उत्सृष्टांक, भाण, प्रहसन, वीथी, नाटिका एवं सट्टक।[20]

सागरनन्दी एवं रूपक

सागरनन्दी ने नाट्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि –

धर्मादिसाधनं नाट्यं सर्वदुःखापनोदकृत्।। [21]

अर्थात् समस्त दुःखों का अपहर्ता धर्मादि का साधन नाट्य कहलाता है। इन्होंने नाटकलक्षणरत्नकोश में भरतमुनि द्वारा कहे हुए दश रूपक ही बताए हैं – 'अभिनेयं नाटकं प्रकरणं प्रहसनम् अंकः व्यायोगः भाणः समवकारः वीथी डिमः ईहामृगश्चेति दशैतानि रूपकाणि।' [22] इनके भी समस्त रूपकों के लक्षण भरत मुनि से ही प्रभावित है।

---

[13] प्रख्यातवस्तुविषयस्त्वप्रख्यातः कदाचिदेव स्यात्।
दिव्यपुरुषैर्वियुक्तः शैषैर्युक्तो भवेत्पुंभिः।।
करुणरसप्रायकृतो निवृत्तयुद्धोद्धतप्रहारश्च।
स्त्रीपरिदेवितबहुलो निर्वेदितभाषितश्चैव।।
नानाव्याकुलचेष्टः सात्त्वत्यारभटीकैशिकीहीनः। वही 18.94–96

[14] प्रहसनमपि विज्ञेयं द्विविधं शुद्धं तथा च संकीर्णम्।
वक्ष्यामि तयोर्युक्तया पृथक्पृथग्लक्षणविशेषम्।।
भगवत्तापसविप्रैरन्यैरपि हास्यवादसम्बद्धम्।
कापुरुषसंप्रयुक्तं परिहाषाभाषणप्रायम्।।
अविकृतभाषाचारं विशेषभावोपपन्नचरितपदम्।
नियतगतिवस्तुविषयं शुद्धं ज्ञेयं प्रहसनं तु।।
वेश्याचेटनपुंसकविटधूर्ता बन्धकी च यत्र स्युः।
अनिभृतवेषपरिच्छदचेष्टितकरणैस्तु संकीर्णम्।।
लोकोपचारयुक्ता या वार्ता यश्च दम्भसंयोगः।
स प्रहसने प्रयोज्यो धूर्तप्रविवादसम्पन्नः।।
वीथ्यंकै संयुक्तं कर्तव्यं प्रहसनं यथायोगम्। वही 18.102–107

[15] आत्मानुभूतशंसी परसंश्रयवर्णनाविशेषस्तु।
विविधश्रयो हि भाणो विज्ञेयस्त्वेकहार्यश्च।।
परवचनमात्मसंस्थं प्रतिवचनैरुत्तरोत्तरग्रथितैः।
आकाशपुरुषकथितैरंग विकारैरभिनयैश्चैव।।
धूर्तविटसंप्रयोज्यो नानावस्थान्तरात्मकश्चैव।
एकांको बहुचेष्टः सततं कार्यो बुधैर्भाणः।। वही 18.108–110

[16] सर्वरसलक्षणाढ्या युक्ता ह्यंगैस्त्रयोदशभिः।
वीथी स्यादेकांका तथैकहार्या द्विहार्या वा।।
अधमोत्तममध्याभिर्युक्ता स्यात्प्रकृतिभिस्तिसृभिः।
उद्घात्यकावलगितावस्यन्दितनाल्यसत्प्रलापाश्च।।
वाक्केल्यथ प्रपंचो मृदवाधिबले छलं त्रिगतम्।
व्याहारो गण्डश्च त्रयोदशांगान्युदाहृतान्यस्याः।।
त्रयोदशसदांगानि वीथ्यामेतानि योजयेत्। वही 18.112–115

[17] अग्निपुराण 338.1–4

[18] विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3.17.1–28

[19] काव्यलंकारसूत्र 1.3–30

[20] श्रृंगारप्रकाश प्रथम भाग अध्याय–15, पृ.सं. 660–668 डा. रेवाप्रसाद द्विवेदी(सम्पादक)

[21] नाटकलक्षणरत्नकोश – 3

[22] वही पृष्ठ 2

आचार्य धनंजय एवं रूपक

आचार्य धनंजय ने नाट्य को सम्यक्तया परिभाषित किया है, जिसका उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। इनका उद्देश्य रूपकों की कथावस्तु जो नाट्यशास्त्र में बिखरी हुई है तथा अत्यन्त विस्तार से है, उसको सुव्यवस्थित तथा संक्षेप में प्रस्तुत करना है। दशरूपक के तृतीय प्रकाश में आचार्य धनंजय ने दस रूपकों को परिभाषित किया है। अधिकांशतया इन पर भी भरत मुनि का ही प्रभाव है, तथापि कुछ स्थलों पर उनसे भिन्न भी इनका मत प्रतीत होता है। जैसे इन्होंने पूर्वरंग तथा नान्दी का उल्लेख नहीं किया है।

रामचन्द्र गुणचन्द्र एवं रूपक

नाट्यदर्पण का रूपकविवेचन भी सामान्यतया भरत मुनि तथा अभिनवगुप्त से प्रभावित है। ऐसा माना जाता है कि इन्होंने दशरूपक की प्रतिद्वन्द्विता में इस ग्रन्थ की रचना की थी। अनेक स्थलों पर इन्होंने दशरूपक की आलोचना भी की है। भरतमुनि द्वारा कहे गए दस रूपकों में नाटिका तथा प्रकरणिका को जोड़कर ये बारह रूपक मानते हैं। कैशिकी आदि वृत्तियों के आधार पर इन्होंने रूपकों का वर्गीकरण किया है। ये रसों का सुखात्मक तथा दुःखात्मक दोनों प्रकार का मानते हैं। इनके अनुसार शृंगार, हास्य, वीर, अद्भुत और शान्त रस सुखात्मक हैं तथा करुण, रौद्र, बीभत्स तथा भयानक रस दुःखात्मक हैं। इनका अंक का लक्षण भरतमुनि तथा धनंजय से अधिक परिष्कृत है।[23]

अतः स्पष्ट है कि दश रूपकों का जो स्वरूप भरतमुनि के द्वारा निर्धरित किया गया था, वह स्वरूप ही परवर्ती आचार्यों के ग्रन्थों में प्राप्त होता है। यहाँ तक कि अधिकांश आचार्यों ने उनके मतों का संक्षिप्त रूप में वर्णन किया है। इससे उनमें दुरूहता आ गई है। दशरूपककार तथा नाट्यदर्पणकार का प्रयास निश्चित रूप से प्रशंसनीय है। इन्होंने दशरूपकों के लक्षण तो भरतमुनि से ही ग्रहण किए हैं, परन्तु उन्हें संक्षिप्त कर सरल रीति से प्रतिपादित किया है। इसके अतिरिक्त दशरूपक तथा नाट्यदर्पण में रूपकों के प्रतिपादन के साथ प्रसिद्ध रूपकों के उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं।

उपसंहार

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आचार्य विश्वनाथ से पूर्व भी रूपक सम्बंधी पर्याप्त अध्ययन नाट्यशास्त्रियों द्वारा किया गया है। जहां एक और भरतमुनि रूपकों के वर्णन क्रम में नाटकादि दश रूपकों का निरूपण करते हैं। वहीं दूसरी और अग्निपुराण में 27 रूपकों का उल्लेख प्राप्त होता है। इन्ही रूपकों में से 17 रूपकों को बाद के आचार्यों ने उपरूपकों के रूप में वर्णित किया है। इसी प्रकार विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी 12 रूपकों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसमें भरतमुनि प्रणीत भेदों के अतिरिक्त नाटिका तथा प्रकरणी रूपक भेद उपलब्ध होते हैं। भरतमुनि का अनुसरण करते हुए आचार्य वामन भी दश ही रूपकों का निरूपण अपने ग्रन्थ काव्यलंकारसूत्रवृत्ति में करते हैं। आचार्य भोज १२ रूपक एवं १२ उपरूपकों का प्रतिपादन करते हैं। सागरनन्दी ने भी भरतमुनि प्रणीत दशरूपकों को ही स्वीकार किया है। रामचन्द्र एवं गुणचन्द्र 12 रूपक भेदों को स्वीकार करते हैं। अतः रूपकों की अध्ययन परम्परा का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट है कि आचार्य भरतमुनि प्रणीत रूपक भेदों को ही अन्य आचार्यों ने भी स्वीकार किया है।

सन्दर्भ

1. शारदातनय,भावप्रकाशन ओरियण्टल सीरीज, 1930.
2. अग्निपुराण, संपा0 पं बलदेव उपाध्याय गीताप्रेस गोरखपुर, वाराणसी, 1966.
3. भारद्वाज, रामदत्त, काव्यशास्त्र की रूपरेखा, सूर्यप्रकाशन, 1967.
4. सागरनन्दी,नाटकलक्षणरत्नकोश, वाराणसी चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 1972.
5. प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी. शृंगारप्रकाश. इन्दिरागांधीराष्ट्रीयकलाकेन्द्रम्,सैन्ट्रल विस्टा मेस, जनपथ, नई दिल्ली, 2007.
6. प्रो. व्रजमोहन, नाट्यशास्त्र. विद्यानिधि प्रकाशन खजूरी खास, दिल्ली, 2014.
7. मुसलगांवकार, राजेश्वर. दशरूपक. चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी, 2014.
8. श्री कृष्णसूरि, काव्यलंकारसूत्रवृत्ति. श्री वाणी विलास प्रेस श्रीरङ्ग नगर, 2014.
9. आचार्य शिव प्रसाद द्विवेदी, विष्णुधर्मोत्तरपुराण. चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2015.
10. डॉ. नागेन्द्र, नाट्यदर्पण. हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, 2015.

[23] दशरूपक, भूमिका भाग – श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार मेरठ, एकादश संस्करण, 2000 ई., पृष्ठ 8–9